स्वामी विवेकानन्द के राजनीतिक व राष्ट्रीय विचार और तत्कालीन युवा समाज पर प्रभाव

–डॉ. किरण मदान
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
राजनीति–विभाग
आई.बी. (पी.जी.) कॉलेज, पानीपत

स्वामी विवेकानंद न्याय और स्वतन्त्रता के पोषक थे। उनका 'सन्यासी का गीत' वन्दे मातरम् की भांति पुष्ट और भावपूर्ण है। अतीत, वर्तमान और भविष्य को नैतिक ओजस्विता और वर्चस्विता को समवेत करने का संदेश देकर विवेकानन्द का वेदांत नूतन, आर्थिक और राजनीतिक दर्शन का दिगन्तव्यापी जयनाद करता है। उन दिनों ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति भारत में दृढ़ता से जमी हुई थी। यदि विवेकानन्द खुलकर राजनीति स्वायत्तता का समर्थन करते हों, तो निश्चय ही कारागार में डाल दिया होता। इसका परिणाम यह होता कि उनकी शक्ति व्यर्थ में नष्ट होती और देशवासियों के धार्मिक तथा नैतिक पुनरुद्धार का जो काम उन्हें सबसे प्रिय था, उसमें विघ्न पड़ता।

विवेकानन्द ने कर्मयोग का संदेश दिया। राजनीतिक जीवन में भी इस संदेश का भी पूर्णतः भिन्न अर्थ लगाया गया। आगे की पीढ़ियों ने इसका अर्थ यह समझा कि मातृभूमि की निष्काम सामाजिक तथा राजनीतिक सेवा भी कर्मयोग का उदाहरण है। इसी संदर्भ में विवेकानन्द जी के विचार हैं कि – "विवेकानन्द ने स्पष्ट रूप से ब्रिटिश साम्राज्य के नैतिक आधार पर चुनौती नहीं दी, किन्तु उनका सम्पूर्ण जीवन और व्यक्तित्व भारतीय चीजों के प्रति प्रेम और सम्मान का जीवन्त उदाहरण था, इसलिए अप्रत्यक्ष रूप से वे विदेशी अधिपत्य के विरुद्ध विद्रोह के स्पष्ट प्रतीक बन गये।"[1]

विवेकानन्द को प्राचीन भारत की वर्णव्यवस्था में साकार हुए सामाजिक सामंजस्य तथा समन्वय के आदर्श से प्रेरणा मिली थी। इसलिए उनकी हार्दिक इच्छा थी कि जाति प्रथा को उदात्त बनाया जाए। "तत्त्वतः बात यह नहीं है कि समाज पर नीरस एकरूपता की कोई व्यवस्था थोप दी जाए, आवश्यकता इस बात की है कि हर व्यक्ति को सच्चे ब्राह्मण का पद प्राप्त करने में सहायता दी जाए।"[2]

वेदांत और राजनीति

विवेकानन्द के दर्शन के तीन मुख्य स्रोत हैं, प्रथम– वेदों तथा वेदान्त की महान परम्परा। शंकराचार्य विश्व के महानतम तत्त्वज्ञानी माने गए हैं, उन्हें अपने चिंतन के लिए प्रेरणा उन्हीं ग्रंथों से मिली थी। रामानुज, माधव, बल्लभ तथा निम्बार्क के संबंध में भी ऐसा ही कहा जाता है। विवेकानन्द की मेधा विशाल थी। कहा जाता है कि इन्होंने 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' के सभी ग्यारह खण्डों पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। उन्हें मात्र अपने देश के साहित्य का ही गम्भीर ज्ञान नहीं था, बल्कि पश्चिम के प्लेटो से लेकर स्पेंसर तक के तत्वशास्त्रीय साहित्य में भी उनकी अद्भुत गति थी। पश्चिम की वैज्ञानिक उपलब्धियों से भी उनका परिचय था। यद्धपि वे अद्वैतवादी तथा मायावादी थे, किन्तु उनकी बुद्धि समन्वयकारी थी, इसलिए उनकी व्याख्या की अपनी विशेषता है।

आधुनिक यूरोपीय तथा अमरीकी दर्शन का दोष यह है कि उसका जीवन में सम्पर्क टूट गया। वह भाषाशास्त्रीय विश्लेषण के घने जंगल में विलुप्त–सा होता जा रहा है। तर्क का ऐसा धुंधला प्रतीकवाद जिसमें जीवन का संस्पर्श नहीं है, निरर्थक तथा निष्फल है। किन्तु विवेकानन्द का दर्शन जीवनदायी तथा गतिशील है। विवेकानन्द के दर्शन का पूर्ण विवरण प्राप्त करने के लिए हमें उनके सम्पूर्ण ग्रंथों का अवगाहन करना पड़ेगा। उनकी रचनाओं के शुद्ध दार्शनिक अंश निम्नानुसार है–

- ज्ञानयोग
- पतंजलि सूत्रों पर भाष्य
- वेदान्त दर्शन पर भारत और पश्चिम में दिए गए विभिन्न व्याख्यान।

उनका राजनीतिक दर्शन उनकी तीन रचनाओं में सन्निहित है। कोलम्बो से अल्मोड़ा तक व्याख्यान, पूर्व तथा पश्चिम और आधुनिक भारत।"[3] हेगल की भाँति विवेकानन्द का भी विश्वास था कि प्रत्येक शब्द का जीवन किसी एक प्रमुख तत्त्व की अभिव्यक्ति है। उदाहरण के लिए धर्म भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण नियामक सिद्धान्त रहा है।

स्वामी विवेकानन्द जी लिखते हैं– "जिस प्रकार संगीत में एक प्रमुख स्वर होता है। वैसे ही हर राष्ट्र के जीवन में एक प्रधान तत्त्व हुआ करता है और अन्य सब तत्त्व उसी में केन्द्रित होते हैं। भारत का तत्त्व धर्म है एवं समाज सुधार तथा अन्य बिन्दु गौण तत्त्वों में शामिल है।"[4]

स्वामी विवेकानन्द का चिंतन है कि – "राष्ट्र को शक्ति शिक्षा द्वारा ही मिल सकती है।"[5]

स्वामी विवेकानन्द ने उस समय भारत में प्रचलित अत्याचार पूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था की आलोचना करने की नकारात्मक नीति नहीं अपनायी, बल्कि शक्ति के संग्रह पर भावात्मक

बल दिया गया। अगस्त 1898 ई. में उन्होंने 'प्रबुद्ध भारत के प्रति' शीर्षक कविता में लिखा–

"जागो फिर एक बार।
यह तो केवल निंद्रा थी, मृत्यु नहीं थी,
नवजीवन पाने के लिए,
कमल नयनों के विराम के लिए,
उन्मुक्त साक्षात्कार के लिए।
एक बार फिर जागो।
आकुल विश्व तुम्हें निहार रहा है,
हे सत्य! तुम अमर हो।
फिर से बढ़ो
कोमल चरण ऐसे धरो कि एक रज–गण की शांति भंग न हो
जो सड़क पर, नीचे पड़ा है।
सबल, सुदृढ़, आनन्दमय, निर्भय और मुक्त
जागो, बढ़ो चलो और उदात्त स्वर में बोलो।"[6]

विवेकानन्द की बहुमुखी प्रतिभा उनके व्याख्यानों, लेखों और वार्तालापों में व्यक्त होती थी। उपनिषदों और गीता पर उनका असाधारण अधिकार था। पातंजल व्याकरण महाभाष्य का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया था।

स्वामी जी का ओजस्वी व्यक्तित्व राष्ट्रीय–अस्मिता और एकात्मकता के प्रश्न को प्रतिबिंबित करता है। कतिपय साम्यवादी जन समस्त हिन्दू धार्मिक साहित्य को ब्राह्मणितपोषक पौरोहित्य से ग्रस्त मानते हैं।

"1857–1853 के महाविद्रोह के क्रूर, आतंकपूर्ण–निर्मूलन–दमन के बाद भारतीयों का मनोबल क्षीण हो रहा था। पश्चिमी राजनीतिक बल के प्रभाव से और आर्थिक बल की दृष्टि से भी अंग्रेजी साम्राज्यवाद अपने उग्रतर रूप में प्रकट हो रहा था। राजनीतिक और आर्थिक दरिद्रता, आत्मावसादी पराजितों के स्वाभाविक लक्षण हो जाते हैं।"[7]

विवेकानन्द न्याय और स्वतन्त्रता के पोषक थे। शिलाखंड पर समवेत करने का संदेश देकर विवेकानन्द का वेदान्त, नूतन आर्थिक और राजनीतिक दर्शन का दिगन्तव्यापी जयनाद करता है।

निष्कर्ष

सारांश रूप से स्पष्ट है कि स्वामी विवेकानन्द के समय भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक स्थिति पतनवस्था में थी। जाति प्रथा भयंकर रूप से मुंह बाए खड़ी थी। लोकतंत्र अज्ञात था। ऐसी विकटतम परिस्थितियों को देखकर आधुनिक भारत के महानतम पथ–प्रदर्शक स्वामी विवेकानन्द जी व्याकुल हो उठे और भारतीय समाज का उत्थान करने के लिए वे प्राणापण से जुड़ पड़े।

संदर्भ

1. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, The relation of Tilak and Vivekananda. The Vedant Kesari (नवम्बर 1958) पृ. 290–92
2. The Complete works of Swami Vivekananda, पृ. 144
3. वही, पृ. 119
4. The Completeworks of Swami Vivekananda (मायावती मैमोरियल 1936), पृ. 140
5. वही, पृ. 13
6. The life of Swami Vivekananda, जिल्द, 2, पृ. 306
7. डॉ. वी.पी. वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, पृ. 212